छलनी हो गया। ओह! मुझे इसका आभास क्यों नहीं हुआ? और होता भी तो कैसे? क्या इस डिब्बे में कोई ऐसा भी होगा? मैं कभी सोच भी तो नहीं सकती थी। मन में भारी पछतावा और कई सवाल लिए मैं उसकी ओर देखने लगी और ध्यान से उसकी बातें सुनने लगी।

वह बता रही थी कि वह पिछले दस सालों से हर पंद्रह दिन में लगातार फैजाबाद से मुंबई आ जा रही है। जब से उसका यह बेटा पैदा हुआ है लगभग तभी से। तीन लड़कियों के बाद हुआ था वह। जब से पैदा हुआ बीमार ही रहता था। उसने फैजाबाद के कई डॉक्टरों को दिखाया पर कोई दवा काम न आई। बच्चे की स्थिति बद से बद्तर होती चली गयी। किसी डॉक्टर की सलाह पर गाँव के मुखिया से कर्ज माँग कर वह उसे दिल्ली ले गयी। दिल्ली के सरकारी अस्पतालों में कई चक्कर लगाये पर बच्चे की स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ। उसकी गरीबी को देखते हुए वहीँ के एक डॉक्टर ने उसे मुंबई के सरकारी अस्पताल में जाने की सलाह दी। जहाँ उसके बेटे का मुफ्त इलाज हो सकता था। महिला कहती जा रही थी कि फैजाबाद से दिल्ली तक कोई ऐसा व्यक्ति अथवा डॉक्टर न हुआ जिसके आगे वह रोई न हो। उसका बेटा बहुत छोटा था जब उसके पति की मृत्यु हो गयी। फैजाबाद के किसी गाँव में उसका कच्चा सा मकान है। तीन छोटी बेटियाँ और यह एकलौता बीमार बेटा। जिसके बीमारी की कोई थाह न पा कर गाँव की यह गरीब, असहाय मुसलमान महिला घर की दहलीज पार कर फैजाबाद से बाहर दिल्ली-मुंबई जैसे महानगरों में अपने बेटे को जिलाए रखने की आस में हर पंद्रह दिन में अस्पतालों के चक्कर काट रही थी।

दिल्ली के डॉक्टर ने उसे बताया तो कुछ नहीं लेकिन एक पर्ची लिख कर पकड़ाने के साथ उसे मुंबई के टाटा मेमोरियल अस्पताल में जल्द से जल्द पहुँचने की सलाह दी। पर्ची में लिखी बातों से पूर्णतः अनभिज्ञ गाँव की वह अनपढ़ स्त्री बच्चे को लेकर घर लौट आयी। उसकी पंद्रह व तेरह वर्ष की दोनों बेटियाँ आस-पड़ोस के घरों में काम कर जैसे-तैसे रोटी का जुगाड़ कर लेती थीं। बेटियों को पड़ोसिनों के भरोसे छोड़ तथा टिकट के पैसों का इंतजाम कर वह बेटे के साथ मुंबई पहुँची। उसे मुंबई के टाटा मेमोरियल अस्पताल में आने के बाद यह ज्ञात हुआ कि उसके बेटे को ब्लड कैंसर की बीमारी है जिसके लिए उसे हर पंद्रह दिन में रक्त बदलवाने के लिए मुंबई आना जरुरी है। वह बताती जा रही थी कि वहाँ इलाज मुफ्त है। लेकिन हर पंद्रह दिन में मुंबई से फैजाबाद की यात्रा का भार उठा पाना उसके लिए कहीं से भी सरल न था। उसके गाँव में कई पढ़े-लिखे लोग हैं। जो उसकी लाचारी से वाकिफ थे। गाँव की ग्रामपंचायत भी है जिससे उसे कई उम्मीदें थीं परंतु किसी ने उसे सहानुभूति के सिवा कुछ न दिया। कहते-कहते उसका आक्रोश फूट पड़ा, सब बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। ऊँचे-ऊँचे लोगों तक अपनी पहुँच का बखान करते हैं। सौ प्रकार के सलाह देते हैं पर, मदद कोई नहीं करता। भला हो मुंबई के अस्पताल के उस डॉक्टर का जिसने एक माँ की परिस्थिति तथा उसके दर्द को समझा। कानूनी मदद से सरकारी कोष से कुछ रुपये दिलाये तथा आवश्यक कागदी कार्यवाही से रेलवे से हर पंद्रह दिन की यात्रा का पास बनवाने में मदद की।

वह यह नहीं जानती थी कि डॉक्टर तथा अस्पताल द्वारा दिए उस कागज में क्या लिखा है? पर उसे इतना ज्ञान अवश्य था कि उसके बेटे के इलाज के लिए, उसके जीवन की उम्मीद के लिए, उस अनिश्चित काल की नियमित यात्रा के लिए यह कागज बेहद जरुरी है। उसको दिखा देने मात्र से ही उसे यात्रा का टिकट मिल जाता था तथा टीटीई कभी उसे इस डिब्बे से बाहर नहीं करता। वह लाचार माँ जो अपने आस-पास के गाँव के लोगों को जहाँ एक ओर जी भर कर कोस रही थी वहीं मुंबई के उस अस्पताल के डॉक्टर को पनियाई आँखों से लाखों दुआएँ देती जिसकी बदौलत उसे बेरोकटोक इलाज चलते रहने तक साकेत एक्सप्रेस के थर्ड एसी कोच में दो सीटों का आरक्षण मिला था।

सालों से परिचित अस्पताल के कर्मचारी उस दुखियारी माँ को भी रोगियों के लिए आने वाले मुफ्त भोजन में से दोनों समय का भोजन दिलवा दिया करते थे। उनमें से कुछ उसके हिम्मत व हौसले की दाद देते नहीं थकते, तो कुछ चाय-बिस्किट के नाम ही पर सौ-पचास रुपये दे दिया करते थे। उसकी दुःख भरी दास्तान सुन कर कई बार लोकमान्य तिलक टर्मिनस से अस्पताल तक ले जाने वाले टैक्सी वाले टैक्सी का किराया तक छोड़ दिया करते थे। जिसने दस वर्षों से गरीबी, बीमारी और लाचारी का यथार्थ भोगा था उस मुस्लिम माहिला से यह जान कर मुझे बेहद गर्व महसूस हो रहा था कि भारत में और कहीं हो न हो पर मेरे शहर के लोगों में आज भी मानवता जिंदा है। भारत का यह महानगर जाति, धर्म से परे मानव धर्म को ही सर्वश्रेष्ठ मानता है इसलिए हर जाति, हर भाषा, हर धर्म के लोगों को अपनी गोद में समेटे हुए है। इसी कारण लोग मुंबई को मिनी इंडिया की संज्ञा दिया करते हैं। पिछले दस वर्षों का उसका अनुभव कह रहा था कि मुंबई केवल चकाचौंध और व्यस्तता का ही शहर नहीं बल्कि मानवीय संवेदनाओं को समझने तथा निराशा में भी आशा दे कर संघर्ष के साथ जीवन जीने की कला सिखाने वाला शहर है।

जहाँ अपने शहर की इस मानवता पर मैं गदगद थी। वहीं मन में ये टीस भी रह -रह कर उभर रही थी कि मैं उसके बच्चे को रात में खाना न दे सकी। मैं मन में कोई पछतावा ले कर आगे बढ़ना नहीं चाहती थी। हम एक सप्ताह की यात्रा पर चले थे। अतः मेरे पास खाने-पीने की कई चीजें थी। मैंने झटपट कई तरह के नमकीन, चिप्स और बिस्किट के पैकेट्स उस नन्हे से रहीम को पकड़ा दिए और उसकी माँ को अगली यात्रा के सहयोग के लिए पाँच सौ रुपये का नोट। अब तक माँ की गोद में चुपचाप पड़ा रहीम खाने की कई चीजें पा कर खुश हो गया था और उसकी माँ हाथ जोड़ आभार की मुद्रा में खड़ी हो गयी। स्टेशन आ चुका था। हम सामान ले कर नीचे उतर आये। अवधबिहारी की भूमि पर कदम रखते ही मुझे यह आभास हुआ कि राम की सच्ची सेवा यही है कि उनके कोष का पुजापा उस नन्हे से रहीम को मिले जिसे इस समय उसकी बेहद आवश्यकता है। ■